इसकी थाह पाना कठिन था। मुझे उनसे मिलने का सौभाग्य 1971 में ही मिल सका था। मैं आदरणीय महाकवि प्रभातजी से मिलने पटना गया था। उन्होंने कहा कि गंगाबाबू पटना में हैं, क्या आप उनसे मिलना चाहेंगे। मैं गंगाबाबू का नाम तो बराबर सुनता आता था, मेरे कोलकाता के बंधु नथमलजी तो उनकी प्रशंसा करते नहीं अघाते थे, पर मैं उनसे कभी मिला नहीं था। मैंने तुरत हामी भर दी। प्रभातजी ने जब गंगाबाबू को मेरा परिचय दिया तो वे बोले, 'क्या आप वही गुलाब हैं जिनकी कविता **आज** में निकलती है और जिनकी एक कविता का मैं निरंतर पाठ करता हूँ।' मैंने पूछा कि वह कौन-सी कविता है तो उन्होंने मेरी कविता **अकेलेपन का सफर** की पंक्तियाँ सुनानी प्रारंभ कर दीं। मैंने कहा, 'जी हाँ, वह मेरी ही कविता है।' इस पर गंगाबाबू मेरे मूँह की ओर देखते हुए बोले-'हो सकता है, आपने वह कविता लिखी हो पर आप उसके मर्म को नहीं समझ सकते। आपको बीस वर्ष के बाद उस कविता का पूरा बोध होगा। आप जानते है, मैंने **आज** की तो, जिसमें वह कविता छपी थी, जितनी प्रतियाँ मिल सकीं, ले ही लीं, वह कविता मुद्रित करवाके लोकसभा में भी अपने मित्रों को पढ़ने को दी है।' उन दिनों फोटोस्टेट की सुविधा भारत में नहीं थी। उस समय के बाद से मैं गंगाबाबू का स्नेह उसी तरह पाता रहा जैसा स्नेह वे दिनकरजी, प्रभातजी आदि वरेण्य कवियों को देते थे। अमेरिका में भी उनके लंबे-लंबे पत्र आते थे। अपनी अति व्यस्तता के बीच मुझे इस प्रकार दृष्टि में बनाये रखना इसका प्रमाण है। उनकी अंतिम बीमारी में, जब वे दिल्ली के एक अस्पताल में थे, मैं अमेरिका से भारत पहुँचने पर उनसे मिलते रहने के लिए दिल्ली में कई दिन रुका रहा। उस समय मेरी नवीनतम काव्यकृति **हम तो गाकर मुक्त हुए** की कविताएँ सुनकर उन्होंने कहा 'गुलाबजी, आपने नामकरण गलत किया है। आप अभी मुक्त नहीं हो सकते। आपको अभी बहुत गाना है। मुक्त तो मैं होने जा रहा हूँ।' फिर उन्होंने इस संदर्भ में दिनकरजी का उदाहरण दिया। उन्होंने कहा, 'मैंने दिनकर को बहुत फटकारा कि तुमने **हारे को हरिनाम** का नाम अपनी काव्य-कृति को क्यों दिया। इसका अर्थ है तुम हार गये। और इसके कुछ दिनों बाद ही जब दिनकर मेरे साथ तिरूपति गये थे तो उनका रात्रि में एकाएक हृदयगति रुक जाने से स्वर्गवास हो गया।'

गंगाबाबू की उक्ति मेरे लिए अक्षरशः सही निकली। वे तो कुछ दिनों बाद ही सचमुच जीवन की कारा से मुक्त हो गये और मैं उस वार्तालाप के वर्षों बाद भी गाता जा रहा हूँ।

केशो बाबू

मैं जितने व्यक्तियों के संपर्क में आया हूँ उनमें हमारे गया नगर के सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी डा. केशव प्रसाद सिन्हा का त्याग और चरित्रबल मुझ पर विशेष छाप छोड़ गया है। वे चंदशेखर आजाद और भगतसिंह के समकालीन थे और उन्हींके समान अंग्रेजी शासन से देश को मुक्त कराने के लिए अपनी युवावस्था में क्रांतिकारी-दल में सम्मिलित हो गये थे। गया षड़यंत्र केस में, जिसमें मेरे मित्र नगरपालिकाध्यक्ष राधामोहन भी सम्मिलित थे, केशोबाबू को कालेपानी की सजा मिली थी। कांग्रेसी शासन द्वारा मुक्त किये जाने के बाद उन्होंने नगर में होमियोपैथी चिकित्सा प्रारंभ कर दी थी जिसमें उन्हें पर्याप्त यश प्राप्त हुआ था। मैं अक्सर रात में उनके अवकाश की घड़ियों में उनके निवास पर पहुँच जाता था जहाँ नगर के अन्य सार्वजनिक जीवन बितानेवाले व्यक्तियों का जमघट लगा रहता था। केशोबाबू को सत्ता की राजनीति में विशेष रुचि लेते मैंने कभी नहीं देखा, परंतु सेवा की सभी योजनाओं में उनका हाथ अवश्य रहता था। उन्हें कोई पुत्र नहीं था, केवल एक पुत्री थी जिसका विवाह करके पत्नी की मृत्यु के बाद वे गृहस्थी की सभी चिंताओं से मुक्त हो चुके थे। होमियोपैथी की चिकित्सा से उन्हें तीन-चार हजार रुपयों की मासिक आय होती थी जो 1940-50 के दिनों में बहुत अच्छी आय मानी जाती थी। उस आय में से घर-खर्च, दफ्तर और घर का किराया 5-6 सौ रुपये काट कर शेष समस्त राशि वे प्रतिमास धर्मार्थ वितरित कर देते थे। उस आय का एक पैसा भी वे बैंक में या अपने भविष्य के लिए बचाकर नहीं रखते थे। मैं सुनता था कि क्रांतिकारी जीवन में उन्होंने अपनी पैतृक संपत्ति और अपनी पत्नी के गहने तक बेच डाले थे। उनकी अपार त्यागभावना का एक उदाहरण तो मैंने अपनी आँखों से स्वयं देखा है। उनका एक मित्र भगवान दास मेरी एक दुकान किराये पर लेकर अपना सोने-चाँदी का व्यापार चलाता था। उसके यहाँ बहुत से लोगों ने ब्याज के लोभ में रुपये जमा कर रक्खे थे। भगवानदास की दुकान घाटे में चल रही थी जिसके कारण मेरा दो-तीन वर्ष के किराये का प्रायः एक हजार रुपया भी बकाया रह गया था। उसके मधुर स्वभाव के कारण न तो मैं माँग पाता था और न वह दे पाया था। एकाएक भगवान दास की मृत्यु हो गयी और उसका पुत्र, यह सोचकर कि जिनका पैसा जमा है वे दुकान की बचीखुची सोने-चाँदी की पूँजी जब्त कर लेंगे, चुपचाप रात में आकर सोने-चाँदी के कुल आभूषणों को पेटी

में भरकर अपने घर ले गया और दुकान खाली कर गया। जहाँ तक मेरे बकाया किराये का प्रश्न था, मैं निश्चिंत था क्योंकि दुकान में जड़ी हुई दो बड़ी तिजोरियाँ उसको चुकाने के लिए पर्याप्त थीं जिन्हें चुपचाप हटाकर नहीं ले जाया जा सकता था। दुकान खुली हुई पाकर मैंने उस पर अपना ताला लगा दिया। पावनेवालों में हलचल तो मची परंतु वे कर ही क्या सकते थे! रुपयों की रसीद तो उनके पास थी परंतु भगवानदास की कोई अचल संपत्ति न होने के कारण और चल संपत्ति के हटा दिये जाने के कारण चुप होकर बैठने के सिवा उनके पास कोई चारा नहीं था। भगवानदास केशोबाबू के भी भक्तों में था। केशोबाबू को पूरी घटना का पता लगा तो उन्होंने भगवानदास के लड़कों को बुलाया और स्वर्णाभूषणों से भरा वह वक्स उनसे मुझे दिलाया तथा मेरे जिम्मे यह काम सौपा कि मैं उक्त राशि को बेचकर प्राप्त अर्थराशि को अनुपात से पावनेदारों के बीच वितरित कर दूँ, अर्थात् लिक्विडेटर की भूमिका अदा करूँ। मेरे किराये की राशि को उन्होंने तिजोरी आदि बेचकर पूरी की पूरी वसूल करने को कहा क्योंकि वह तो पूरी की पूरी मुझे मिल ही रही थी। तिजोरियों की बिक्री के हजार के लगभग रुपये उन्होंने मुझे लेने को कह दिया था। प्रश्न पावनेदारों के डूबे हुए रुपयों की अधिक से अधिक वसूली करा देने का था। जमा रकम प्रायः लाख सवा लाख के लगभग थी जब कि गहनों की बिक्री से प्राय बीस पच्चीस हजार रुपये ही मिल सके थे। जिन लोगों से भगवानदास को रुपये लेने थे उनका तो कहीं पता भी नहीं था और न उन पर मेरा कोई जोर ही था। मैंने पावनेदारों की लिस्ट की छानबीन करके करीब रुपये का चार आना चुकाने का निश्चय किया। पावनेदारों में केशोबाबूजी की पुत्री के तीन हजार रुपये तथा उनके एक अन्य भक्त के भी करीब 10 हजार रुपये थे। केशोबाबू ने मुझसे कहा कि उन्हें पावनेदारों की सूची में सम्मिलित नहीं करूँ क्योंकि उन दोनों की पूरी की पूरी राशि वे अपने पास से चुकायेंगे। दुकान में एक बिजली का सीलिंग फैन था जो केशोबाबू ने दे रक्खा था और जिसकी मुझे जानकारी थी। मैंने उसे केशोबाबू के पास उतरवा कर भिजवा दिया। संध्या को जब मैं उनके पास पहुँचा तो वे बहुत रुष्ट होकर बोले - 'यह पंखा मेरे यहाँ क्यों भेजा है, इसे बेचकर भी बाँटे जानेवाले रुपयों में सम्मिलित कर लें।' मैंने कहा कि एक तो आप दस हजार रुपयों का पच्चीस प्रतिशत भगवानदास के आभूषणों की विक्रय-राशि से नहीं दिला रहे है और उन्हें पूरा का पूरा अपने पास से चुका

रहे हैं, दूसरे, पंखा जो आपका निजी है उसे वितरण की जानेवाली राशि में सम्मिलित कर रहे हैं, यह मुझे अच्छा नहीं लगता है। वे हँसकर बोले - 'गुलाबजी, मैं जैसा कहता हूँ, वैसा ही करें, मेरी चिंता छोड़ दें।'

बाद में प्रायः सालभर तक प्रतिमास डाक्टर साहब अपनी आमदनी में से काट-काटकर वे रुपये चुकाते रहे। इस त्याग और सेवा के कार्य की एक मात्र मुझे ही जानकारी थी। इस प्रकार के कितने ही काम उन्होंने किये जो वही जानते हैं जिन्होंने उन्हें देखा है। केशोबाबू ने कभी उसका ढिँढोरा नहीं पीटा न उसके लिए किसीकी प्रशंसा की अपेक्षा ही रक्खी। मात्र अपने कर्तव्य का पालन किया।

बिहार विधानसभा के चुनाव में उन्हें कांग्रेस की टिकट दी गयी तो सभी पार्टियों की जमानत जब्त कराके वे विजयी हुए। परंतु असेंबली की सदस्यता उन्हें रास नहीं आयी। उन्होंने त्यागपत्र देकर संन्यास ग्रहण कर लिया और मथुरा चले गये। सारे नगर ने मार्ग के दोनों ओर खड़े होकर उन्हें जो विदाई दी वह दृश्य अपूर्व था। मैं जानबूझ कर उन्हें विदाई देने उनके सामने नहीं गया क्योंकि मैं अपने भावावेश को नहीं रोक सकता था। विदा की पहली रात मैंने उन्हें कहलवाया कि आप गाँधी और विनोबा की तरह संन्यास क्यों नहीं ग्रहण करते। आप के द्वारा प्रतिमास कितनी ही विधवाओं, अनाथों और विद्यार्थियों को जो सहायता मिल रही है, वह आपके संन्यास लेने से बंद हो जायगी। यथार्थ में तो आप सही रूप में संन्यासी ही हैं। परंतु उन्होंने कहला भेजा - 'गुलाबजी से कह दीजिए, मैं गाँधी और विनोबा जैसा महान व्यक्ति नहीं हूँ।'

संन्यास ग्रहण करके मथुरा के एक मठ में रहने पर भी उनकी जन-सेवा चलती ही रही और होमियोपैथी की सेवा में कोई व्यवधान नहीं आया। अंतर यही था कि अब वे पैसा नहीं छूते थे। मठ के बूढ़े महंत ने उन्हें अपनी विशाल संपत्ति का उत्तराधिकारी बनाकर संपत्ति का भार सौंपना चाहा तो वे वहाँ से भागकर एक दूसरे स्थान में जा बैठे। मैं उनसे मिलने समय-समय पर मथुरा जाया करता था। एक बार जिस मठ में वे रहते थे वहाँ उन्हें न पाकर, जब मैं दूसरे स्थान पर उन्हें ढूँढ़ता हुआ पहुँचा तो उन्होंने कहा, 'पिछले स्थान पर पानी का कष्ट था जो दूर से लाना पड़ता था। मैं यह कष्ट सहर्ष स्वीकार करता था परंतु एक अन्य दंपती नित्य पानी भरकर जब मेरे पास पहुँचाने लगे तो मेरे लिए यह असह्य हो गया और मैंने वह स्थान छोड़ दिया। '

मैं, केशोबाबू से उनकी मृत्यु के कुछ दिन पूर्व मिला था और अपनी नवीन कृति **आलोकवृत्त** के कुछ अंश उन्हें सुना पाया था। उन्होंने उस कृति को अपना आशीर्वाद भी दिया था जो उसके प्रकाशित होते ही समस्त उत्तर प्रदेश में उसके इंटर की टेक्स्ट बुक बना दिये जाने के रूप में सद्यः प्रतिफलित हुआ।

पराडकरजी

मैं अपनी प्रारंभिक अवस्था में ही जिन व्यक्तियों के संपर्क में आया उनमें से कई अपने क्षेत्र में शीर्षस्थल पर माने जाते थे। जैसे निरालाजी, मैथिलीशरण जी, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' कवियों में सर्वोच्च थे, उसी प्रकार पं. रामचंद्र शुक्ल, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र और नंददुलारे बाजपेयी तीनों ऐसे समीक्षक थे जिनसे नवीन तथा प्राचीन, दोनों ही काव्य-धाराओं की समालोचना का पूर्ण प्रतिनिधित्व हो जाता है। हिंदी के पत्रकार-जगत में बाबूराव विष्णु पराडकरजी भी अन्यतम माने जाते थे। मैं बेढबजी के साथ अनेक बार उनके निवासस्थान पर आया-जाया करता था तथा उनकी रोचक वार्ताएं सुनने का लाभ पाता था। वे उस समय के प्रतिष्ठित पत्र **आज** के संपादक थे। उन्होंने एक बार बताया कि जब मालवीयजी ने हिंदू विश्वविद्यालय की योजना बनायी तो **आज प्रेस** से चंदे की छपी हुई रसीद उन्होंने मालवीयजी को देते हुए कहा, 'मालवीयजी, आपको तो बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं एवं श्रीमंतों के चंदे की राशि मिलनी है; परंतु मेरा निवेदन है कि एक गरीब पत्रकार की सौ रुपये चंदे की राशि से चंदे की पहली रसीद कटे और यह गौरव मुझे ही प्राप्त हो।' यह कहकर उन्होंने एक सौ एक रुपये आगे बढ़ा दिये और मालवीयजी ने हिंदू विश्वविद्यालय के चंदे का प्रारंभ उनके दान से किया। पराडकरजी और बेढबजी के बीच गंभीर वार्ता के बीच में कभी-कभी हलकी-फुल्की चर्चाएं भी हो जाती थीं। एक बार रात्रि में बेढबजी के साथ पराडकरजी के घर पर जब मैं बैठा था तो आयोजनों में जूतों की चोरी की चर्चा चल पड़ी। पराडकरजी ने इस संबंध में कई रोचक संस्मरण सुनाये। एक आयोजन में उनके जूते चोरी चले गये थे। सर्दी की रात थी और उन्हें पैदल चलकर घर पहुँचना था। उन्होंने किसी दूसरे के जूते जो पाँवों में ठीक आ गये थे, पहन लिये और अपने घर तक चले आये। जब वे सीढ़ियों से ऊपर चढ़ने लगे तो एक व्यक्ति ने पीछे से आवाज दी, 'सरकार, अब तो आपका काम हो गया, अब मेरे जूते लौटा दीजिए।'

इसी प्रकार एक अन्य आयोजन में दो व्यक्ति अपने जूते न पाकर दूसरों के जूते पहन कर घर चले आये थे। दूसरे दिन संयोग से एक पान की दुकान पर उनकी भेंट हो गयी। दोनों की आँखें एक दूसरे के पाँवों पर टिकी हुई थीं। दोनों ने अपने जूते न पाकर दूसरों के जूते पहनकर चले आने की बुद्धिमानी दिखाई थी। परंतु वे नहीं जानते थे कि दोनों ने एक दूसरे के जूते पहन लिये थे। उनकी आँखें मिलीं। ओठों पर मुस्कुराहट आ गयी और दोनों ने चुपचाप अपने जूते बदल लिए। उन दोनों की यह चोरी पराडकरजी और पानवाले के अतिरिक्त और कोई नहीं जान सका।

इस संबंध में अपना अनुभव लिख रहा हूँ। मुझे एक कविसम्मेलन के अंत में रात के 12 बजे लौटना था। काका हाथरसी के द्वारा बारबार आग्रह करने पर ही अपने खोये हुए जूतों के स्थान पर किसी अन्य के जूतों में पाँव डालने का मुझे साहस हुआ। ग़नीमत थी कि सर्दी की रात में मेरे पाँवों पर उनके स्वामी की दृष्टि नहीं पड़ी और मैं उन्हें पहन कर कविसम्मेलन से सौ मील दूर ट्रेन द्वारा चला आया। न तो घर में प्रवेश करते समय मुझे किसीसे पुकारे जाने की लज्जा झेलनी पड़ी न दूसरे दिन पान की दुकान पर जूतों के असली मालिक से भेंट होने की ही समस्या आयी।

श्री विमल मित्रजी

बंगभाषा के महान उपन्यास-लेखक विमल मित्रजी से, जब मैं कोलकाता जाता था तो मिला करता था। यद्यपि वे जल्दी किसीसे मिलते नहीं थे परंतु मुझ पर और हमारी संस्था **अर्चना** पर उनका विशेष स्नेह रहता था। **अर्चना** के प्रधानमंत्री नथमलजी केड़िया को तो उन्होंने अपनी 5 कृतियाँ भी समर्पित की थीं। उनका चरित्र अत्यंत उदात्त था। एक बार उनके 70वें जन्मदिन पर नथमलजी ने उनके अभिनंदन की योजना बनायी। मैं उन दिनों कोलकाता में ही टिका हुआ था। उन्हें सत्तर हजार रुपयों की थैली देने का निश्चय किया गया। प्रसिद्ध फिल्म-निर्देशक सत्यजित राय ने उन पर एक लघु वृत्तचित्र बनाने का निश्चय किया और उस समय के प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता अतुल्य घोष ने अभिनंदनसभा का सभापतित्व करने का वचन दिया। सारी योजना पक्की होने पर जब मैंने विमल मित्रजी पर इसका रहस्योद्घाटन किया तो वे प्रसन्न होने के स्थान पर उखड़ गये। उन्होंने कहा कि उनके जीवनकाल में उनका सम्मान नहीं होना चाहिए क्योंकि उसका कोई मूल्य नहीं है। उनके मरने के बाद जो सम्मान होगा, वही उनका असली मूल्यांकन होगा। इस प्रकार हम लोगों की सारी योजना धूलिसात् हो गयी। यह एक घटना ही विमलबाबू के चरित्र के औदात्य को बताने में यथेष्ट है। मुझे उनसे निरंतर अपने साहित्य-सृजन में प्रेरणा मिलती रही है।